भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी उपलक्ष्यमें

स्वामिनारायण परिचय पुस्तक माला – पुष्प : २

वचनामृत बिन्दु

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था प्रकाशन



भगवान स्वामिनारायण

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी के उपलक्ष्यमें

स्वामिनारायण परिचय पुस्तकमाला : पुष्प-२

भगवान स्वामिनारायण के

वचनामृत बिन्दु



: प्रकाशक :

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोतम संस्था

शाहीबाग रोड, अहमदाबाद-३८०००४

प्रकाशक :

प्रकट ब्रह्मस्वरूप

स्वामी श्री नारायणस्वरूपदासजी-प्रमुख स्वामी

अध्यक्ष :

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी

प्रकाशन समिति

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

शाहीबाग रोड, अहमदाबाद-३८०००४

प्रथम आवृत्ति प्रत : २००० एप्रिल, १९७९

द्वितीय आवृत्ति प्रत : ५००० फरवरी, १९८०

मूल्य : ७५ पैसा

प्राप्तिस्थान :

श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण मंदिर,



* शाहीबाग रोड, अहमदाबाद-३८०००४

* स्वामिनारायण चौक, दादर (C.R) बम्बई-४०००१४

* ६१, चक्रवेरिया रोड (नोर्थ), कलकत्ता-७०००२०

तथा संस्था के अन्य केन्द्र.

मुद्रक :

साधना प्रिन्टरी,

घीकांटा रोड नोवल्टी सिनेमाके सामने,

अहमदाबाद-३८०००१.

प्रकाशकीय निवेदन

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्थाने भगवान् स्वामिनारायण द्विशताब्दी के उपक्रम में स्वामिनारायण धर्म सम्बन्धी तत्त्वज्ञान, साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास आदि विविध विषयों पर अलग अलग पुस्तिकाओं का प्रकाशन शुरू किया है ।

इस व्यस्त एवं यांत्रिक युग का आधुनिक मानव कम से कम समय में, कम से कम शब्दों में किसी भी विषय की जानकारी प्राप्त करना चाहता है । इसी दृष्टि से सरल, सुबोध, रोचक शैली में-संक्षिप्त रूप में प्रकाशित की जा रही इस पुस्तकमाला के द्वारा सभी जिज्ञासुओं को स्वामिनारायण धर्म का परिचय होगा, ऐसी आशा है ।

ये पुस्तिकाएँ गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित करने का आयोजन है ।

सीमित पृष्ठों में प्रकाशित इन लघु पुस्तिकाओं में विषय का सांगोपांग विस्तृत विवेचन शक्य नहीं है ।

हमें आशा है कि विषय का परिचय हो जाने पर जिज्ञासुओं को, विषय को गहराई से पूरा जानने की और समझने की स्वयं प्रेरणा होगी, भूख पैदा होगी, और वे गहरे ग्रन्थ पढने के लिये लालायित होंगे ।

इस पुस्तिका के प्रधान सम्पादक शास्त्री ईश्वरचरणदासजी एवं उनके सहायक सभी साथी सम्पादकों के प्रति सादर कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम यह अपेक्षा करते हैं कि विशाल वाचकवर्ग एवं धर्मसाहित्यप्रेमी वर्ग इस प्रयत्न को सराहेंगे ।

—प्रकाशन समिति

वचनामृत

पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान स्वामिनारायण की परावाणीका यह संग्रह है। समाज-उद्धार के लिये सतत विचरणशील उन्होंने विविध स्थानों में जो उपदेश दिया, उसको गोपालानंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी और शुकानंद स्वामीने संपादित करके 'वचनामृत' रुपसे प्रसिद्ध किया। स्थल, काल, आदिके निश्चित वर्णन से इसका ऐतिहासिक महत्त्व निर्बाध है। वचनामृत शुद्ध गुजराती गद्यका आद्य एवं उत्तम ग्रंथ है।

उपनिषद शैली की तरह इसमें प्रधानतया प्रश्नोत्तररुप में बोध दिया गया है, फिर भी इसकी आलेखनशैली मौलिक और अद्वितीय है। यह ग्रंथ मुमुक्षु साधक को आध्यात्मिक सिद्धिके लिये सर्वांगी, सरलतम मार्गदर्शन और तदनरुप जीवन जीनेकी अनुभवसिद्ध प्रेरणा प्रदान करता है। वेद, उपनिषद्, गीता आदि विद्वद्भोग्य शास्त्रों का सार भगवानने सरल वचनों से अमृतरूप में परोसा है—जिसको पीनेवाला अमर हो जाय!

सांख्य, योग, वेदांत, पंचरात्र, आदि सत्शास्त्रों की यथार्थ समजूति द्वारा भगवत्स्वरुप का वर्णन इसमें दिया है। साथ साथ धर्म, ज्ञान, वैराग्य और माहात्म्य युक्त भक्ति—अध्यात्म साधना का आचरणीय सिद्धांतबोध वचनामृत में सरल, मिताक्षरी और लोकभोग्य जीवंत प्रवचनशैली में दिया गया है।

जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, परब्रह्म—तत्त्वज्ञान के विषयों की इसमें विशद चर्चा की हैं। 'ब्रह्मरुप होकर परब्रह्म की भक्ति करना' यह मुक्ति मानी गई है। उसके लिये प्रगट ब्रह्मस्वरुप-परम भागवत संतवर्य का समागम अनिवार्य माना गया है।

इसमें भगवानने स्वयं कहा है कि—"यह जो वार्ता है, उसे हमने प्रत्यक्ष देखकर की है, हमारे अनुभव द्वारा भी सिद्ध की है। हम जिस तरह करते हैं, उसी तरह कहते हैं।"

गुरुपरंपरा

भगवान स्वामिनारायणके द्वारा प्रबोधित "अक्षरपुरुषोत्तमकी उपासना अर्थात् स्वयं अक्षररुप होकर पुरुषोत्तमकी भक्ति करनी चाहिये" इस सनातन सिद्धान्तका **अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी**के बाद ब्रह्मस्वरुप **प्रागजी भक्तने** दृढतापूर्वक प्रसार किया। उनके शिष्य स्वामी श्री **यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज)** ने उपासना-भक्तिके प्रसारके लिये मन्दिरों का निर्माण करके उनमें भगवान स्वामिनारायण की उनके परम भक्त श्री गुणातीतानन्द स्वामी के साथ, अर्थात् पुरुषोत्तम की अक्षर के साथ मूर्ति प्रतिष्ठित की।

उनके अनुगामी **स्वामीश्री योगीजी महाराज** ने भारत के ही नहीं, सारे विश्व के समक्ष अपने विचार एवं आचार के द्वारा एक आदर्श सन्तपरमहंस का दृष्टान्त उपस्थित किया। अपनी निर्दोष सन्तप्रतिभा एवं निःस्वार्थ प्रेमभाव के द्वारा असंख्य मनुष्यों को, विशेषरुप से युवावर्ग को, धर्माभिमुख किया। नवदीक्षित युवा सन्तों द्वारा संस्कृत, साहित्य एवं संगीत जैसी कलाओं तथा भक्ति को पोषण देते हुए समाज में विलुप्त होती सी धर्मश्रद्धा को पुनर्जीवन दिया। देश-विदेशमें अनेक संस्कार केन्द्रों की स्थापना की।

वर्तमानकाल में उनके अनुगामी **स्वामी श्री नारायणस्वरुपदासजी (प्रमुख स्वामी)** उसी कार्यक्रम को विशेष विस्तृत कर रहे हैं। उनकी छत्रछाया में देश-विदेशों में हजारों बालक-युवक मुमुक्षु सत्संगमय जीवन बीता रहे हैं। उनकी प्रेरणा से अकालपीडितों एवं संकटग्रस्त पीडितों को राहत; विद्यार्थियों को शैक्षणिक सहायता; वैद्यकीय सहायता, आदिवासी एवं पिछडी जातियों के प्रदेशों में संस्कार सिंचन; दवाखाना; पाठशाला; शालेय छात्रालय; गुरुकुल; शिष्ट साहित्य प्रकाशन; ललित कलाओं को उत्तेजन, मन्दिर निर्माण एवं संस्कार

केन्द्रों का संस्थापन इत्यादि अनेकविध प्रवृत्तियाँ सुचारुरुप से चल रही हैं। पूज्य प्रमुख स्वामी इन पवित्र प्रवृत्तियों के भक्तिरस से समाज को नवपल्लवित रख रहे हैं।

सर्वधर्मसमभाव एवं सर्वजीवसमादर ये उनके विशिष्ट एवं सहज गुण हैं।

अक्षर-पुरुषोत्तम विषयक तत्त्वज्ञान को वेदों, शास्त्रों एवं स्मृत्तियों का पूरा आधार है। इसोलिये इसमें दिव्यता एवं आकर्षण है। यह प्रेमका, आध्यात्मिक जागृति का तथा साधना का राजमार्ग है।

तो आइए, निर्भय और निःशंक होकर हम इस राजमार्ग पर चलें, आगे बढे। भगवान स्वामिनारायण हम सब पर आशीर्वाद बरसा रहे हैं।



वचनामृत बिन्दु

नोंध-बिन्दुओं के नीचे कौंसमें दिये गये अक्षरों एवं आंकडों की जानकारी :-

प्र-गढडा प्रथम प्रकरण

सा-सारंगपुर ,,

का-कारियाणी ,,

लो-लोया ,,

पं-पंचाळा ,,

म-गढडा मध्य ,,

वर-वरताल ,,

अह्-अह्मदावाद् ,,

अं-गढडा अन्त्य ,,

भगवान स्वामिनारायणने उपर्युक्त स्थानों में उपदिष्ट विषयों का महासंचयग्रन्थ है "वचनामृत"। २६२ वचनामृतोंमें से जो विन्दु जिस स्थान के वचनामृत से संग्रहीत किया गया है उस स्थान का उपरोक्त अक्षरों से संक्षिप्त संकेत किया गया है। गढडाके वचनामृत प्रथम, मध्यम और अन्त्य इन तीन प्रकरणों में विभाजित हैं।

आँकड़े उस उस प्रकरण के वचनामृतों के क्रमांक के निर्देशक हैं।

सत्संग

सन्तका समागम तो परम चिन्तामणि एवं कल्पवृक्ष है। (प्र. १४)

*

संग भी ऐसे व्यक्तिका करना चाहिये, जो प्रभुका भक्त, पंच वर्तमान (व्रतों) से युक्त एवं ब्रह्मवेता साधु हो। यदि ऐसा हुआ तो हरिभक्तकी प्रभु पर जो भक्ति है, वह विशेष समृद्ध होगी। (प्र. २९)

*

साधुका संग करनेसे अपनी देहके प्रति आमतौर पर जो अहंबुद्धि है वह नष्ट हो जाती है, और देहके सम्बन्धियोंके प्रति ममत्व बुद्धि भी खत्म हो जाती है। इस प्रकार अहंता और ममताकी निवृत्तिसे भगवान पर अनन्यभाव पैदा होता है। (प्र. ८)

*

यदि बिल्कुल शुद्ध भावसे (श्रद्धा-विश्वास के साथ) सत्संग किया जाय तो दिलमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं रहता और ऐसा व्यक्ति इसी देहमें ही ब्रह्मरुप हो जाता है। (सा. ९)

*

यदि भगवानके स्वरूप का चिन्तन न भी हो सके, तो भी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे युक्त इस साधुके बीच पड़ा रहना चाहिये। (म. ४८)

*

सत्संग केवल अपने आपके कल्याणके लिये ही करना चाहिये । किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये ।
(प्र. ७०)

*

कुसंग

अपने कल्याणकी इच्छावालेको चाहिये कि वह किसी नास्तिक या शुष्क वेदान्तीका संग न करे । (म. १८)

*

कल्याण

भगवान जब पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूपसे नहीं हो, तब भगवानका जिन्होंने दर्शन किया हो ऐसे साधुओं का आश्रय करना चाहिये, उससे भी जीव का कल्याण होता है ।
(वर. १०)

*

स्वधर्म, ज्ञान, वैराग्य और माहात्म्यज्ञान सहित भगवानकी भक्ति करनेवाले भगवानके एकान्तिक साधुओंके द्वारा भागवत धर्मका परिपोषण होता है और ऐसे साधुओंके प्रसंगसे ही जीवके मोक्ष का द्वार भी खुलता है । (प्र. ५४)

*

अपना कल्याण चाहनेवाले के लिये भगवान और भगवानके साधु के अलावा इस दुनिया में दूसरा कोई सुखदायी नहीं है । इसलिये जीव को अपनी देहमें जैसी आत्मबुद्धि होती है, बिल्कुल वैसी ही आत्मबुद्धि भगवान और भगवान के साधु-संतों पर रखनी चाहिये और भगवान के

भक्तों के प्रति सुदृढ पक्ष (आत्मीयभाव) रखना चाहिये।
(अं. ७)

*

भगवान की उपासना करना, भगवान के चरित्र गाना, सुनना, भगवान का स्मरण करना और अपने धर्म का पालन करना, इन उपायोंसे अपने जीव का कल्याण करना कोई कठिन बात नहीं है। यह तो नावमें बैठकर समुद्र पार करने की तरह आसान है। आत्मदर्शन के द्वारा कल्याण प्राप्त करने का मार्ग तो तूँबा बांध कर समुद्र पार करने की तरह बहुत कठिन है।
(म. ३५)

*

आत्मकल्याण चाहनेवालेको अपने मनके साथ जरूर बैर करना पड़ता है। (वर. १)

*

भगवान के स्वरूप का ज्ञान एवं भगवानका माहात्म्य जानना, ये दो मोक्षके असाधारण हेतु हैं। (प्र. ५७)

*

प्रत्यक्ष पुरुषोतमके प्रति दृढ निष्ठा ही आत्यन्तिक कल्याण कहा जाता है।
(का. ७)

*

देह छूटने के बाद

एकान्तिक भक्तकी देह जब छूट जाती है, तब उसका श्रीकृष्ण भगवानमें उस तरह प्रवेश हो जाता है जैसे किसी

अतिशय लोभीका अपने धनमें प्रवेश होता है। मतलब कि जीवकी जिस पदार्थ में आसक्ति होती है, वह उसीमें प्रविष्ट होता है। जल जैसे जलमें घुलमिल जाता है, अग्नि अग्निमें एकरूप हो जाता है, उस प्रकार वह प्रवेश नहीं होता। यह तो जिसका जिस पदार्थ में प्रवेश हुआ है, उसका अपने इष्टदेवके सिवा दूसरे किसी पदार्थ में प्रेम पैदा न हो और केवल उसीका सतत चिंतन होता रहे। यदि उसके सिवा जीये फिर भी भारी कष्टों के दिन भोगकर जीये, लेकिन उसे सुख नहीं मिलता। (म. ३८)

*

साक्षात्कार

भगवानका दर्शन करके और उनकी कथावार्ता सुनकर भी यदि निरन्तर उसका मनन, निदिध्यासन न किया जाय तो सारी उम्रभर दर्शन-श्रवण करने पर भी उसे भगवानका साक्षात्कार होना संभव नहीं। (सा. ३)

*

सत्पुरुषके विषयमें दृढ प्रीति ही आत्मदर्शनका साधन है। सत्पुरुषकी महिमा जाननेका एवं परमेश्वरके साक्षात् दर्शन करने का भी यही एकमात्र साधन है। (वर. ११)

*

आत्मबल

भगवान और भगवानके सन्तों पर जिनको प्रेम हो और उनकी सेवामें अतिशय श्रद्धा हो, एवं वे भगवानकी नवधा

भक्तिसे युक्त हों ऐसे व्यक्तियोंके जीव में बल आता है।

(म. ६३)

*

प्रकट

राम, कृष्ण आदि परोक्ष भगवदवतारों का एवं नारद सनकादिक, शुकजी, जड़भरत, हनुमान, उद्धव आदि उनके परोक्ष साधुओं का माहात्म्य जिस प्रकार लोग जानते हैं, मानते हैं, बिल्कुल उसी प्रकार यदि प्रत्यक्ष भगवान का एवं प्रत्यक्ष उनके भक्त साधुसन्तों का माहात्म्य लोग जानें और मानें तो कल्याण के विषय में उनको कुछ भी जानने–मानने का बाकी नहीं रहता।

(म. २१)

*

जिस तरह जीवको परोक्ष देव के प्रति प्रतीति (श्रद्धा, विश्वास) हैं, उसी तरह यदि प्रत्यक्ष गुरुरूप हरि के प्रति प्रतीति (श्रद्धा, विश्वास) हो जाये तो उसे उन सारे पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है, जिन पदार्थों को वह प्राप्त करना चाहता है। जब ऐसे गुरुहरि का सन्तसमागम हो जाये, तो देह के छूटने के बाद हम जिस परमपद या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं, वह माना हमें सदेह अवस्थामें–जीते जी मिल जाता है।

(अं. २)

*

संत

महान् सन्त वही है जो अपने शरीर का दमन करके शारीरिक दोषों मिटा दे, मनके दोषोंको इस ज्ञान से खत्म

करे कि 'मैं आत्मा हूँ, और सारे संकल्पों से भिन्न एवं सुखरूप हूँ।' इस तरह शरीर का दमन एवं आत्मविचार जिसको हो वही महान संत है। (का. ३)

*

निर्मानी साधु का यह धर्म है कि वह भगवान से डरता हुआ लेशमात्र अभिमान न करे एवं चींटी जैसे जीव को भी कष्ट न दे। (प्र. ६२)

*

साधु वही है, जो अपनी देह और उसके सम्बन्धियों के विषयमें अहंता–ममता का त्याग करके अपनी आत्मा को ब्रह्मरुप मान कर सारी वासनाओंसे मुक्त होकर, अपने धर्म का आचरण करते हुए भगवान का भजन करे। ऐसी साधुता जिस साधुमें आ गई है, ऐसे साधु और भगवान पुरुषोत्तम के बीच कोई दूरी नहीं रहती। (प्र. ४४)

*

अपने जीवात्माको अपने स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरोंसे अलग मानकर, 'अपनी आत्मा के भीतर भगवान अखंड विराजमान हैं,' ऐसा समझनेवाले सन्तसे भगवान एवं भगवान का धाम अणुमात्र भी दूर नहीं है, ऐसे सन्त का जब दर्शन हो जाये तो समझ लेना चाहिये कि भगवान का साक्षात् दर्शन हो गया। (सा. १०)

*

निष्ठावान सन्त की चरणरेणु को हम (स्वामिनारायण भगवान) अपने सिर पर चढ़ाते हैं और उसके दिलको

ठेस पहुँचाते हुए मनमें डर लगता है और ऐसे सन्तके दर्शनके लिये हम तरसते हैं। भगवान के ऐसे यथार्थ भक्त का दर्शन भगवान के दर्शन के तुल्य है और ऐसे सन्त के दर्शन से अनन्त पतित जीवों का उद्धार होता है। (प्र. ३७)

*

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि अनन्त शुभ गुणों से युक्त भक्त के हृदय में भगवान निवास करते हैं। फलस्वरुप वह भक्त भगवान के प्रताप से अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और वह अनन्त जीवोंका उद्धार करता है। ऐसा सन्त सारे जगत का आधार स्तम्भ है। (प्र. २७)

*

साधुसे बड़ी कोई दूसरी उपाधि नहीं है। किसी राजा का राज्यप्रदेश जितना भी होगा, उसमें राजा की तरह रानी का भी शासन चलेगा और वह राज्य रानी का भी कहा जायेगा। उस राज्य में जैसे राजा का हुक्म चलता है वैसे रानी का भी हुक्म चलता है, बिल्कुल उसी तरह भगवान का जितना प्रताप है, उतना ही साधुका भी प्रताप है। (म. २२)

*

भगवान और भगवान के उत्तम लक्षणवाले सन्त की जो अति प्रेम से समान सेवा करता है, वह चाहे कनिष्ठ भक्त हो और दो, चार, दस या सो जन्मों के बाद उत्तम भक्त की कोटि में आने की योग्यता रखता हो, वह इसी जन्म में ही उत्तम

वन जाता है, भगवान और भगवान के भक्त की समान सेवा करने का यह फल है। (वर. ५)

*

भगवान की तरह पूजा-सेवा करने योग्य सन्त वे ही हैं, जो इन्द्रियाँ और अंतःकरण की मायिक गुणक्रियाओं पर अपना कावू जमाए, खुद उनके कावू में न फँसें और भगवान सम्बन्धी क्रियाओं को करते हुए पंच वर्तमानों (व्रतों) का पालन करते हुए अपने को ब्रह्मरूप मानकर पुरुषोत्तम की उपासना में लगे हों। ऐसे सन्तों को मनुष्य और देव के समान नहीं समजना, ऐसा आचरण देव व मनुष्यके लिये भी संभव नहीं। ऐसे सन्त भले ही मनुष्य हो, फिर भी वे भगवान की तरह पूजने के योग्य हैं। (अं. २६)

*

देहाभिमानसे रहित एवं वैराग्य से युक्त और भगवानके अल्प वचनके लोप को महद्‌वचन का लोप माननेवाले भगवानके परम भक्त ऐसे वडे सन्तोंके साथ अपने जीवको जोड देना चाहिये, और मन, वचन, कर्मसे उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। (अं. ३८)

*

सुवर्ण और स्त्री किसके लिये बन्धनरूप नहीं हैं?

जो व्यक्ति प्रकृति और पुरुषसे पर ऐसे शुद्ध चैतन्य ब्रह्म को ही परम सत्य मानता है और उस ब्रह्मको ही अपना

स्वरूप मानकर-ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म श्री कृष्ण का भजन करता है; और ब्रह्म से नजदीक रही प्रकृति एवं प्रकृति के कार्यमात्र को असत्य, नाशवन्त, तुच्छ समझता है, और मायिक नामरूप के प्रति अतिशय दोषदृष्टि से देखता हुआ, उसकी ओर वैराग्यभाव रखता है, उसके लिये सुवर्ण और स्त्री वन्धनरुप नहीं हैं, दूसरों के लिये वे अवश्य वन्धनकर्ता हैं। (म. ३०)

*

भक्त

इस जीव को जव भारतवर्ष में मनुष्यदेह मिलती है तव भगवान के अवतार अथवा भगवान के साधु धरती पर अवश्य विचरण करते हैं, और जिस जीव को उनकी पहचान हो जाये तो वह जीव भगवान का भक्त हो जाता है। (वर. १९)

*

सत्यरूप अपनी आत्मा तथा सत्यस्वरूप भगवान के साथ जिसको इस प्रकार का संग होता है वही सत्संगी कहलाता है। (अं. ३९)

*

पक्के हरिभक्त वनने का यही एकमात्र उपाय है कि वह परमात्मा के दास का भी गुलाम होकर रहे और वह यह समझे कि 'ओर सारे भक्त वडे हैं, महान् हैं और मैं उन सब से छोटा हूँ, न्यून हूँ,। (प्र. ५८)

*

जो भगवान का भक्त होता है, वही भगवान के भक्तों को पहचानता है, और उनका माहात्म्य भी वही जानता है। (म. १७)

*

जो व्यक्ति अपनी देह को मिथ्या और अपनी आत्मा को सत्य समझता है, तथा अपने स्वामी के उपभोग के योग्य पदार्थों का स्वयं उपभोग करना नहीं चाहता, और स्वयं ऐसा आचरण कभी नहीं करता जो अपने स्वामी को पसंद न हो, वही हरि का दास कहलाता है।

(प्र. १४)

*

जो चतुर्विध मुक्ति को न चाहकर केवल भगवान की सेवा ही चाहता है वही निष्काम भक्त है। उस निष्काम भक्त को ही गीता में भगवानने ज्ञानी कहा है। (प्र. ४३)

*

भगवान के प्राकृत चरित्रों में भी जो दिव्यता का दर्शन कर सकता है वही परमात्मा का सच्चा भक्त है। (म. १०)

*

जिसको भगवान के सिवा और किसी भी पदार्थ में वासना न हो और अपने को ब्रह्मरूप मानकर भगवान की भक्ति करता हो, वही एकान्तिक भक्त है। (प्र. ११)

*

जो हरिभक्त होते हुए भी यंत्रमंत्र में प्रतीति–विश्वास करता हो, उसे आधा विमुख समझना चाहिये। (म. ३८)

*

भक्ति

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

इन नव प्रकारों से भगवान का भजन करना वही भक्ति है । (प्र. ४०)

*

भगवान के कीर्तन गाना, स्मरण करना और नारायण धून करना इत्यादिक सारी बातें भगवान की मूर्ति का स्मरण करते हुए ही करनी चाहिये । (प्र. २२)

*

परमात्मा का दृढ आश्रय लेना इसीका नाम भक्ति है । ऐसी भक्ति ही परमपद है । (म. १०)

*

नारदजी जैसा गुणवान व्यक्ति में भी यदि भगवानकी भक्ति न होवे तो वह मुझे पसंद नहीं है । (प्र. ३७)

*

श्रद्धासे सहित एवं ईर्ष्यासे रहित होकर जो भक्ति करता है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है । (म. ५२)

*

जैसे दस-बारह सालकी कोई कन्या हो, उसे क्षय रोग हो जाये और युवावस्था आनेके पहले ही वह मर जाये तो उसको जवानी आती ही नहीं, उसी तरह बिना माहात्म्यकी भक्ति, परिपक्व न होकर वह नष्ट हो जाती है ।

(सा. ५)

*

शुकसनकादिक जैसे महापुरुषोंकी सेवा और उनके प्रसंग द्वारा जीवमें माहात्म्य युक्त भक्तिका उदय होता है।
(अं. ५)

*

सभी पदार्थोंमें वैराग्यभाव रखकर स्वधर्मके आचरण के साथ की गई भगवान की भक्ति ही एकान्तिकी भक्ति कही जाती है, ऐसी भक्ति करनेवाला भक्त ज्ञानी कहा जाता है और वही ज्ञानी सभी भक्तोंमें श्रेष्ठ है। (पं. ३)

*

ब्रह्मरूप व्यक्ति को ही पुरुषोत्तम की भक्ति का अधिकार है। (लो. ७)

*

ब्रह्मरूप कैसे हो?

जीव निरन्तर मनन करता हुआ यदि ब्रह्मका संग करे तो उसमें ब्रह्म के गुण आ जाते हैं। (म. ३१)

*

योगयज्ञ

विषयोंमें फँसे हुए इन दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन—सबको, वहाँसे खींचकर ब्रह्मस्वरूप अग्निमें हवन करना इसीका नाम योगयज्ञ है। (म. ८)

*

ज्ञानयज्ञ—अंतर्दृष्टि

भगवानका भक्त अन्तर्दृष्टि के साथ जो आचरण

करता है वही ज्ञानयज्ञ है। बाहर और भीतरसे भगवानकी मूर्ति की ओर वृत्ति करना, यही है अन्तर्दृष्टि। (म. ८)

*

इस प्रकार ज्ञानयज्ञ करते करते जब अपने स्वरुप-ब्रह्ममें भगवान परब्रह्मका साक्षात्कार हो जाये, बस यहीं ज्ञानयज्ञका फल है। (म. ८)

*

प्रीति

सत्पुरुष का प्रसंग-समागम ही परमेश्वर के प्रति प्रीतिका कारण है। (प्र. ४४)

*

जिसके दिलमें भगवानके प्रति प्रीति होती है, वह कभी भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करता। भगवान की इच्छा के अनुसार आचरण करना यही प्रीतिका लक्षण है। (का. ११)

*

भगवानकी मूर्तिका अखण्ड स्मरण रहना ही स्नेह है। जिस भक्तमें भगवान के प्रति परिपूर्ण स्नेह है, उसको भगवानके सिवा दूसरा कोई संकल्प ही नहीं होता। यदि दूसरा संकल्प होता है तो समझना चाहिये कि उसके स्नेहमें उतनी कमी है। (प्र. ४४)

*

भगवानके सन्तों पर इतनी प्रीति रखनी चाहिये, जितनी

स्त्री, पुत्र, माता, पिता और भाई पर रहती है। ऐसी प्रीतिसे जीव कृतार्थ हो जाता है। (म. ५९)

*

बड़े बड़े आचार्यों का यह सिद्धान्त है कि जो भक्त गुणातीत होकर भगवान पर प्रीति करता है वही ब्रह्मस्वरूप है। (म. ४३)

*

आत्मबुद्धि

भगवानके भक्तोंके प्रति आत्मीय बुद्धि रखनेवालेने ही सभी साधनों से अधिक कल्याणकारी सत्संगको अच्छी तरह समझा है। (म. ५४)

*

निश्चय

शास्त्रोमें सन्तके लक्षण कहे हैं, वे निष्काम, निर्लोभ, निर्मान, निःस्वाद और निःस्नेह हैं। इन लक्षणोंसे युक्त सन्त और भगवानका साक्षात् सम्बन्ध होता है। अतः ऐसे सन्तके आदेशानुसार भगवानमें दृढ निश्चय करना चाहिये। उन सन्तके वचनमें जो दृढ विश्वास रखना वही निश्चय है। (अं. २७)

*

जीवको अपने इष्टदेव-परमात्मा के प्रति जितनी निष्ठा होगी, उतना आत्मा-अनात्माका विवेक पैदा होगा। इष्ट-देवके बलके विना कोई भी साधन कामयाब नहीं हो सकता। (प्र. ५६)

*

भगवान पर यदि अनन्य निष्ठा हो तो उसे चाहिये कि वह प्रत्यक्ष भगवान के सिवा और किसी भी पदार्थ की इच्छा न करे। (प्र. ९)

*

स्थितप्रज्ञ

जिसको भगवान के स्वरूप में किसी प्रकार का उत्थान नहीं है उसे निर्विकल्प स्थितियुक्त समझना चाहिये और उसी को ही स्थितप्रज्ञ समझना चाहिये। (म. १७)

*

उपासना

उपासना उसे कहते हैं, जो भगवान के स्वरूप के विषय में सदा साकार भावना की दृढ निष्ठा हो, और भजन करनेवाला स्वयं ब्रह्मरूप हो जाये तो भी यह निष्ठा नष्ट न हो। (प्र. ४०)

*

मृत्युसमय समुद्र के समान है, इस लिये वहां तो चाहे आत्मनिष्ठावान् हो, चाहे आत्मनिष्ठारहित हो, दोनों को भगवानकी उपासनारूपी नौका की जरूरत पड़ती ही है। (प्र. ६१)

*

अपने जीवात्मा की ब्रह्म के साथ एकता स्थापित करके स्वामीसेवकभाव से परब्रह्म की उपासना करनी चाहिये। (म. ३)

*

भगवान की मूर्ति की उपासना एवं उन के

ध्यान के विना आत्मदर्शन अथवा ब्रह्मदर्शन कतई सम्भव नहीं । (अं. ३६)

*

आज्ञा

सत्पुरुष की आज्ञा के अनुसार जो बरतता है, वही आत्मसत्ता के रूप में बरतता है । (म. ५१)

*

सुखदुःख

भगवान से विमुख जीवों को जो सुखदुःख होता है, वह तो अपने अपने कर्मानुसार होता है । भगवान के भक्तों को जो दुःख होता है, वह तुच्छ पदार्थों की प्राप्ति के लिये भगवान की आज्ञा का उल्लंघन करने से होता है । और जो सुख मिलता है वह भगवान की आज्ञा के अनुसार आचरण करने से । (प्र. ३४)

*

सेवा

भगवान के सन्तों की सेवा तो बहुत पुण्यशालियों को मिलती है, कम पुण्यशालियों को नहीं । (म. ५९)

*

भगवान और भगवान के सन्तों की सेवा का यदि ऐसा व्यसन पड़ जाये कि विना सेवा किये एक क्षण भी न रहा जाये तो उसके अन्तःकरण की सारी मलिन वासनाएँ नष्ट हो जाती है । (म. २५)

*

त्याग

भगवानके भजनमें जो पदार्थ विघ्नकर हो, उसे तो न छोड़ सके और दूसरे कई पदार्थोंका त्याग करे तो उसका वह त्याग व्यर्थ है। (म. ५७)

*

वैराग्य

जब भगवान विषयक सुखमें दृष्टि पहुँचती है, तब सारे मायिक सुखमें अरूचि पैदा हो जाती है और केवल भगवान की मूर्तिमें ही हेत हो जाता है। यही वैराग्य का स्वरूप कहा गया है। (म. १०)

*

धर्म

महापुरुषों की आज्ञाके अनुसार धर्मका पालन किया जाता है, उस वक्त तत्काल तो विधि निषेधका कोई लाभालभ दिखाई नहीं देता, परन्तु अन्तमें जैसे हूंडीसे रुपये मिलते हैं, उसी तरह महापुरुषोंकी आज्ञाके अनुसार चलनेवालेका कल्याण होता है। (म. ६)

*

विधिनिषेध सच्चे हैं, खोटे नहीं हैं। इन सारे विधि-निषेधोंको जो गलत समझते हैं, वे नारकी होते हैं। (प्र. ४२)

*

जो कोई व्यक्ति पाँच वर्तमान (व्रत) रुपी धर्म को

छोड़कर ज्ञान या भक्तिका सहारा लेता है, वह गुरुद्रोही और वचनद्रोही है। ऐसी धर्मभंग की बात यदि कोई कहे तो उसे 'विमुख' कहना चाहिये। (प्र. ७७)

*

ऐसा व्यक्ति, जो भगवानकी मूर्तिकी शरण लेता हो, भगवान के चरित्र गाता सुनता हो, भगवान का नामस्मरण भी करता हो, लेकिन वह यदि धर्माचरण न करता हो तो वह मानो सिर पर पत्थर बाँधकर समुद्रमें तैरना चाहता है, उसे चाण्डाल जैसा समझना। (म. ३५)

*

जैसे भगवान प्रत्यक्ष रूपसे सामने विराजमान हों और हम उनकी मर्यादा रखें, बिल्कुल उसी प्रकार (आठ प्रकारोंकी) मूर्तिके समक्ष भी मर्यादा हमे रखनी चाहिये और सन्तके हृदयमें भगवानकी मूर्ति विराजमान है यह मानकर उनकी भी मर्यादा रखनी चाहिये। (प्र. ६८)

*

निष्काम धर्म

जो निष्काम वर्तमान (ब्रह्मचर्य) रखता है वह हमें प्यारा है। उसका और हमारा इस लोकमें और परलोकमें दृढ मिलाप रहता है। (म. ३३)

*

एकान्तिक धर्म

एकान्तिक धर्ममें जिसकी निष्ठा दृढ हुई है, उसके

द्वारा ही एकान्तिक धर्म प्राप्त होता है। (प्र. ६०)

*

स्त्री–पुरुष मर्यादा

'मन चंगा तो कठौतेमें गंगा' यह कहावत गलत है। समाधिनिष्ठ और विचारवान् व्यक्ति भी स्त्रियों के संसर्गमें रहने लग जाये तो वह धर्मपालन करनेमें असमर्थ हो जाता है। और चाहे जैसी धार्मिक भी स्त्री, पुरुषोंके संसर्गसे धर्मभ्रष्ट हो जाती है। इस प्रकार स्त्री–पुरुषका पारस्परिक सहवास रहे और धर्मरक्षा भी हो ऐसी आशा नहीं रखी जा सकती। यह बिल्कुल सही बात है, उसमें कोई शंका नहीं। (म. ३६)

*

महिमा

जब तक भक्त विषयोंके आकर्षणसे मुक्त नहीं होता तब तक वह भगवानकी अलौकिक महिमा जान ही नहीं सकता। (म. ४)

*

भगवानका माहात्म्य यथार्थ रूपसे एक बार समझमें आ जाये तो भगवानके सिवा और किसी पदार्थमें स्नेह रखना चाहे तो भी नहीं रहेगा। (प्र. ७८)

*

सद्गुण

जिस प्रकार दत्तात्रेयने पंचमहाभूत, चन्द्रमा, पशु,

वेश्या, कुमारिका, अपनी देह आदि कई पदार्थोंमेंसे गुण ही गुण ग्रहण किया, उसी तरह सन्तमेंसे गुण ग्रहण करनेका जिनका स्वभाव है, सत्संगमें उन्हीं की नींव दृढ होती है।
(लो. ५)

*

भगवानकी कथावार्ता सुननेमें जिसकी जितनी प्रीति होगी, उसका उतना ही संसारके प्रति अभाव होगा, और काम, क्रोध, लोभादि दोषोंका नाश होगा। जिसे कथावार्ता सुननेमें अरुचि होगी, उसके विषयमें यह अनुमान करना कि 'उसमें विशेष गुण नहीं आयेंगे।'
(अं. २४)

*

महापुरुषोंके प्रति जो निर्दोष बुद्धि रखता है, वह सभी दोषोंसे मुक्त होता है। और जो महापुरुषोंके दोषोंको खोजता रहता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।
(प्र. ७३)

*

खुदका स्वभाव चाहे खराब भी हो, लेकिन भगवान को यदि वह अतिशय निर्दोष समझता है, तो स्वयं भी अतिशय निर्दोष हो जाता है।
(प्र. २४)

*

देहाभिमान एक ऐसा बड़ा दोष है कि जिसमें सारे दोष समा जाते हैं। यदि वह दोष निकल जाये तो सारे दोष भागजायेंगे। 'मैं देहसे अलग आत्मरूप हूँ' यह आत्मनिष्ठा का एक गुण आ जाये तो और सारे गुण आ जाते हैं। (लो. ६)

*

जिसे दृढ निश्चयपूर्वक भगवान के स्वरूप का सम्बन्ध हो जाये तो उसमें भगवान के कल्याणकारी गुण आ जाते हैं। (प्र. ६२)

*

प्रसन्नता

अपने अपने वर्णाश्रमधर्म के प्रति अचल निष्ठा, आत्म-ज्ञान की अतिशय दृढता, भगवान को छोड़कर और सारे पदार्थों में अरुचि एवं भगवान के प्रति माहात्म्ययुक्त निष्काम भक्ति इन चार साधनों से भगवान की अतिशय प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है। (प्र. २१)

*

जो भगवान को जगत के कर्ता-हर्ता समझता है, और मूर्तिमान् मानता है, उसके ही उपर भगवान प्रसन्न रहते हैं। (वर. २)

*

भगवान को प्रसन्न करने का एक ही उपाय जीव के पास है कि वह मन, वचन, कर्म से भगवान के भक्तों की सेवा करे। भगवान के भक्त का द्रोह करना, यही भगवान को नाराज करने का उपाय है। (म. २८)

*

भगवान और भगवान के सन्त नाराज हों, ऐसे कर्म करनेवालेने भले ही दूसरे कर्म स्वर्ग के लायक किये हों, तो भी उसका विनाश होता है और वह नर्क में गिरता है। नर्क के योग्य कर्म करनेवाले व्यक्तिने यदि भगवान और

भगवान के सन्तों को प्रसन्न करने लायक कर्म किये हैं तो भले ही उसके कर्म नर्क के योग्य हों भले ही उसके प्रारब्ध में वह हो फिर भी उसके सभी पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और वह परमपद प्राप्त करता है। (म. ४५)

*

पंचविषय

वैराग्य हो चाहे न हो, लेकिन यदि परमेश्वर के द्वारा उपदिष्ट नियमों के पालन में सावधान है तो उसके द्वारा पाँचों विषय जीते जा सकते हैं। (म. १६)

*

विषयों की निवृत्ति का एक तो कारण है आत्मनिष्ठा और दूसरा कारण है माहात्म्य सहित भगवान का ज्ञान।
(सा. १)

*

शब्दादिक विषयों में जो सुख जैसा मालूम पड़ता है, वह यद्यपि अच्छा लगता है, लेकिन आत्मा के जरिये उसका अनुभव होता है। शरीर में से आत्मा जब निकल जाती है, तो वही सुख अनिष्ट बन जाता है। (लो. १०)

*

कोई सन्मान करे (खाने, पीने, पहनने, सोने का अच्छा प्रबन्ध करे) अच्छे अच्छे पदार्थों का संयोग हो, तब जिसका मन व्याकुल हो जाये, उनसे किसी प्रकार का आनन्द न आये, तब समझना चाहिये कि 'उसको विषयों के प्रति अरुचि पैदा हुई है।'
(लो. १७)

*

जन्म-मरण का हेतु

जीवमात्र पाँच विषयों के सहारे ही जीता है। या तो वह बाह्य पाँच विषयों को भोगता है, जब उनके योग की संभावना न हो तो उन विषयों का अन्तःकरण में चिन्तन करता है। जीव विना विषयों को भोगे अथवा विना उनका चिन्तन किये क्षणमात्र भी नहीं रह सकता। बाह्य विषयों का भोग कदाचित् वह त्याग भी दे, परन्तु अन्तर में विषयों का जो चिन्तन होता रहता है, वही उसके जन्म-मरण का हेतु है। (अह. ३)

*

इन्द्रियाँ—अन्तःकरण

वैराग्य, स्वधर्म, तप और नियम इन चार साधनों के द्वारा इन्द्रियाँ जीती जा सकती हैं। लेकिन मन—अन्तःकरण तो माहात्म्य से युक्त भगवान की नवधा भक्ति के द्वारा ही जीता जा सकता है। (अं. ११)

*

इन्द्रियों और अन्तःकरण को पाँच वर्तमानों के नियमरूपी पिंजडे में अथवा जंजीर से वन्द करके उनके द्वारा भले ही भगवान की भक्ति करवाई जाये, परन्तु उनके प्रति आदर न रखकर शत्रुभाव ही रखना चाहिये। यदि उनको भक्ति में उपयोगी मानकर उनके प्रति आदरभाव रखे और भगवान के दर्शन, स्पर्शन आदि विषयों में उनको सुखकर मनाते हुए यदि स्त्री आदि विषयों में भी कुछ सुख मना दे तो सारा किया-कराया व्यर्थ हो जायेगा। (पं. ३)

*

एकमात्र जिह्वा को यदि जीत लिया जाये तो मानो सारी इन्द्रियाँ जीती गई । (लो. ८)

*

पाँच इन्द्रियों के द्वारा जीव जिन विषयों का सेवन करता है, वे विषय यदि शुद्ध होंगे तो अन्तःकरण शुद्ध होगा और तभी भगवान की अखण्ड स्मृति रहेगी । यदि पाँच इन्द्रियों के विषयों में से एक का भी सेवन मलिन रहा तो सारा अन्तःकरण मलिन हो जायेगा । (प्र. १८)

*

अन्तःशत्रु

काम

मन को वश करना, प्राणों का नियमन करना, देह का दमन करना, इन तीन उपायों को जो दृढ रखता है, उसके निष्कामी वर्तमान (व्रत) अतिशय दृढ होते हैं । (म. ३३)

*

कामादि शत्रुओं को निर्दय होकर दण्ड देने के लिये तैयार रहना चाहिये । इन्द्रियाँ यदि कुमार्ग पर जाती हैं, अन्तःकरण यदि कुमार्ग पर चलता है तो उनको कड़ी शिक्षा देनी चाहिये । इन्द्रियों को कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों के द्वारा एवं अन्तःकरण को सद्विचारों के द्वारा दण्ड दिया जाये तो इन कामादि शत्रुओं का विनाश हो सकता है ।
(लो. १)

*

आत्मनिष्ठा अति दृढ हो और आठों प्रकार का ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना, इसके साथ ही पाँच

वर्तमानोंका दृढतापूर्वक पालन करे और भगवानके महिमा को अच्छी तरह समजे–बस, इन्हीं उपायों से कामको मूलसे उखाड़ दिया जा सकता है। जमे हुए कामका समूल उच्छेदनका एकमात्र यही उपाय है कि जीव भगवान की महिमा को पूरे तौरसे समज ले। (लो. १)

*

जवानी में कम आहार करके ठण्डी, गर्मी, बरसात, भूख आदि की पीड़ा को समजबूजकर सहन करने के संकल्प के साथ किसी बड़े सन्त–साधु के समागम में रहे तो जवानी में भी काम मन्द हो सकता है। (लो. ८)

*

क्रोध

पागल कुत्ते की लार की तरह क्रोध के छूने भर से मनुष्य अपना मुँह लटकाकर सन्त के रास्ते से गिर जाता है। क्रोध कसाई, आरव, भावर, शेर, तेंदुआ और काले साँप की तरह सब को डराता है। दूसरों के प्राण भी कभी ले लेता है। क्रोध का दूसरा नाम है–'विरुप'। जिस की देह में क्रोध का आविर्भाव होता है, उसकी देह को वह विरुप कर देता है। (लो. १)

*

जिस गाँव के सिवान में शेर दहाड़ता हो, भले ही वह किसी को न मारे, सभी को उसका डर लगता है। घर के बाहर निकलने की कोई हिम्मत नहीं करता। उसी

तरह थोड़ा सा भी क्रोध सब के लिये अतिशय दुःखदायी है । (लो. १)

*

मान

जो मान मिटाना चाहता है वह भगवान और सन्त का माहात्म्य समजे । (लो. १६)

*

ईर्ष्या

यथार्थ ईर्ष्यावाला व्यक्ति किसी के बड़प्पन को देख (सह) नहीं सकता । (सा. ८)

*

ईर्ष्या से भगवान के भक्त का द्रोह होता है । भगवान के भक्त को चाहिये कि वह ऐसी ईर्ष्या का सभी प्रकार से त्याग कर दे । (प्र. ४)

*

यदि ईर्ष्या करनी ही हो तो ऐसी करनी चाहिये कि जिस व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या है, उसके गुण ग्रहण किये जाये और अपने अवगुण छोड़ दिये जायें । (प्र. ४)

*

स्वभाव

स्वभाव पर शत्रुता रखना यह (स्वभाव त्याग के लिये) सभी विचारों में श्रेष्ठ विचार है । (म. १५)

*

आत्मसुख द्वारा भीतर से परिपूर्ण रहना और पाँच इन्द्रियों के द्वारा विषयों का रास्ता वन्द कर देना। यही कामादि को जीतने का दृढ उपाय है। विना इसके केवल उपवास से कामादि का पराजय संभवित नहीं है। (म. २)

*

जो व्यक्ति रजोगुण के कारण मलिन वने स्वभाव को मिटाना चाहता हो, वह मन-वचन-कर्म से निष्कपटतापूर्वक सत्संग करे। (प्र. ३०)

*

जव भगवान का और उनकी महिमा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है तभी स्वभाव की खरावी मिटती है। (प्र. २४)

*

वैराग्यहीन व्यक्ति किसी वड़े सन्त की अतिशय सेवा करे और परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार आचरण करने में लगा रहे, तो उसे परमेश्वर कृपादृष्टि से देखते हैं कि 'यह वेचारा वैराग्यरहित है, इसे कामक्रोधादि खूव परेशान करते हैं, इसलिये इसके विकारमात्र टल जाओ' तभी उसी वक्त वे विकार टल जाते है। (म. ७)

*

अवगुण

जो दूसरों के अवगुण देखता है और अपने गुणों की सराहना करता है, वह सत्संगी होते हुए भी आधा विमुख है। (म. २६)

*

भगवान और भगवान के भक्त के अवगुण ग्रहण करना वह पाँच महापापों से भी बड़ा पाप है। (म. ४६)

*

परमात्मा और परमात्मा के चरित्र में, एवं उनकी ज्ञानदृष्टि में जो दोष देखता है वह विमुख है, अधर्मी है, वह सभी बेवकूफों का सरदार है। (म. ५३)

*

जो सन्त के अवगुण देखता है, वह किसी प्रायश्चित से शुद्ध होने के काबिल नहीं रहता है। जैसे क्षयरोग को समूल मिटाने का कोई औषध नहीं है, वह रोगी निश्चित मरता ही है–बस उसी तरह सन्त के अवगुण खोजनेवाला व्यक्ति मानो क्षयरोगी ही है। वह कभी भी निश्चितरूप से सत्संग से विमुख होगा ही। मान लो उसका सिर कट गया। (लो. १)

*

वासना

गृहस्थ व्यक्ति देह के द्वारा भले ही व्यवहार करे, लेकिन मनसे तो उसे त्यागी की तरह निर्वासनिक रहना चाहिये, भगवान का चिन्तन करना चाहिये। व्यवहार तो भगवान की आज्ञा के अनुसार करना चाहिये। (प्र. ३८)

*

भगवान के भक्त के भगवान सम्बन्धी और विषय सम्बन्धी संकल्प जब तक समान रूप में हों तब तक यही समझना चाहिये कि 'वासना बलवती है।' जब विषय सम्बन्धी संकल्पों से भगवान सम्बन्धी संकल्प ऐसे बलवान

हो जाये कि वे विषय सम्बन्धी संकल्पोंको मार भगाये तो समझना चाहिये कि अब वासना जीर्ण हो गइ है।

(अं. १८)

*

वासनामुक्त जीना यही एकान्तिकका धर्म है। (प्र. ६०)

*

माहात्म्य सहित भगवानकी भक्ति ही वासना मिटाने का बहुत बड़ा अचल साधन हैं। (सा. ५)

*

जिसकी वासना निर्मूल हो गइ है, उसको सुषुप्तावस्था की तरह जाग्रदवस्थामें भी विषय नहीं सताते। ऐसे व्यक्तिको अच्छे और बुरे सभी विषय समान दीखते हैं, और वह गुणातीत भावसे बरतता हैं। (लो. १६)

*

भगवानके निर्वासनिक भक्त ही हमें प्यारे हैं। यही हमारे अन्तःकरणका रहस्य हैं। (म. ५०)

*

वृत्ति

भगवानके स्वरूपमें अखण्ड वृत्ति रखनी चाहिये, इससे बढ़कर कोइ बड़ा साधन नहीं है। इससे बड़ी कोइ प्राप्ति भी नहीं है। (प्र. १)

*

खाते, पीते, हिलते, चलते, एवं शुभ–अशुभ क्रियाएँ करते-सर्वकालमें हमेशा भगवानमें अखण्ड वृत्ति रखनी चाहिये।

(प्र. २३)

*

सभी पदार्थोंसे प्रीति तोड़कर, भगवानमें दृढ प्रीति जोड़ दे और साधुका समागम रखे तो गृहस्थीकी भी त्यागीकी तरह भगवानमें अखण्ड वृत्ति रहती है।

(का. ७)

*

जिसकी वृत्ति निर्वासनिक हो जाती है, उसका चित्त भगवानके स्वरूपमें जुड़ जाता हैं। (प्र. २५)

*

जिस भक्तकी चित्तवृत्ति भगवानके स्वरुपमें जुड़ गइ उसको अनायास ही अष्टांगयोग सिद्ध हो जाता है।

(प्र. २५)

*

ध्यान

भजन करनेवालेके गुणोंको पहचान कर, जिस समय सत्त्वगुण स्थिर हो, उस समय भगवानकी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। (प्र. ३२)

*

अन्तःकरण तो बिल्कुल छोटे बच्चे, बन्दर या पिल्लेकी तरह है। वह स्वभावसे ही ऐसा है कि बिना किसी प्रयोजन खेलकूद करता ही रहे अतः जो भगवानका ध्यान करना चाहता है उसे अन्तःकरणके स्वभावको देखकर घबड़ाना नहीं चाहिये। अपनी आत्माको उससे अलग मानकर भगवानका भजन करना चाहिये।

(प्र. ३२)

*

भगवान की मूर्ति तो चिन्तामणि के समान है

(प्र. १)

*

भगवानको निराकार समझना वह पांच महापापोंसे भी बड़ा पाप हैं। उस पापका कोइ प्रायश्चित्त नहीं है।

(म. ३९)

*

अपने प्रेमी भक्तोंके मनोरथ पूरे करना, यही भगवान के अवतारका प्रयोजन है। साथ साथ वे असंख्य जीवोंका कल्याण भी करते हैं और धर्मकी स्थापना भी करते है।

(का. ५)

*

भगवान तो हमेशा मूर्तिमान ही हैं। ये मूर्तिमान भगवान यद्यपि अक्षरधाममें निवास करते है, तो भी वे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमें भासमान है।

(वर. १३)

*

अक्षरातीत भगवान पुरुषोत्तम ही सभी अवतारोंके कारण है। सारे अवतार पुरुषोममेंसे ही प्रकट होते है और वे पुरुषोत्तममें ही लीन होते है।

(म. १३)

*

प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवानके स्वरूपमें और अक्षरधाम निवासी भगवानके स्वरूपमें कोइ भेद नहीं है। वे दोनों एक ही है। ऐसे प्रत्यक्ष भगवान पुरुषोत्तम अक्षरादि सबके नियन्ता है। वे ईश्वरके भी ईश्वर एवं सभी कारणोंके भी कारण है। वे सर्वोपरि है और सभी अवतारोंके भी अवतारी हैं। अतः आप सबके

लिये एकान्तिक भावसे उपासना करने योग्य है। इस भगवानके पहले भी कई अवतार हुए हैं, वे भी नमस्कार करने योग्य हैं, पूजन करने योग्य हैं। (अं. ३८)

*

जो भगवान हैं, उनके जैसे वे एक ही हैं। भगवान का भजन करके कई लोग भगवानके साधर्म्य को प्राप्त हुए हैं। फिर भी (उनमें से कोई) भगवान की बराबरी तो कर ही नहीं सकता। (अं. ३९)

*

जीवमात्र के कल्याण के लिये भगवान जब मूर्ति धारण करते हैं, तब अपना अक्षरधाम, चैतन्यरूप अपने पार्षद एवं अपने पूरे ऐश्वर्य के साथ ही पधारते हैं। (प्र. ७१)

*

अक्षरब्रह्म

(पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व, प्रधान और पुरुष, प्रकृति और पुरुष) इन सबका कारण अक्षर-ब्रह्म है और वह अक्षर तो भगवान पुरुषोत्तम का धाम है, वह अक्षर मूर्तिमान है। (प्र. ६३)

*

जीव

जीवात्मा खास करके पंचमहाभूत के विकाररूप जो मांस का चक्र है, उसमें व्याप्त है। इस देहमें जीव रहता है और उस जीवमें परमेश्वर साक्षीरूप में बिराजमान है।

(अं. ४)

जीव स्वरूप से एवं स्वभाव से सत्तामात्र है, चैतन्यरूप है, अनादि अज्ञानरूप कारण शरीर से वह युक्त है। जैसे चुम्बक लोहे को अपने पास खींचकर स्वयं उससे चिपका रहता है, उसी तरह जीवका भी चिपक जानेका स्वभाव है। वह मायिक स्थूल और सूक्ष्म शरीर से चिपक जाता है, और अज्ञान के कारण वह शरीर को अपना ही स्वरूप मान लेता है। वस्तुतः जीव स्वयं शरीर नहीं है।

(म. ६६)

*

जब अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है, तब जीवका उन तीनों मायिक देहोंसे संग छूट जाता है। तब जीव केवल चैतन्य सत्तामात्र रह जाता है। भूमि आदि भगवान की जो आठ प्रकृतियाँ हैं, उनसे भिन्न चैतन्य प्रकृति की, भगवान की इच्छा से देह बनती है उससे युक्त होकर जीव भगवान के अक्षर-धाम में रहता है। (म. ६६)

*

मन और जीव

मन और जीव को परस्पर मैत्री है। जो बात जीवको पसंद नहीं है, मन उसका संकल्प भी नहीं करता है। जीवको जब कोई बात पसंद आ जाती है तो मन उसे समजाता है। जीव यदि मलिन हो, पापी हो, तो मनका कहा मान लेता है। मन जब कोई अनुचित संकल्प करे तब यदि जीव मन पर अतिशय गुस्सा करे तो मन दुवारा अनुचित संकल्प करने की हिंमत करेगा ही नहीं, मन यदि हमेशा अनुचित संकल्प करता

ही रहता है, तो समझ लेना चाहिये कि उसमें अपने जीवका भी दोष है । केवल मनका ही नहीं । (अ. ६)

*

मन

यदि इन्द्रियाँ विषयों का स्पर्श ही न करे, तो मन इन्द्रियों की ओर झांके भी नहीं, दिलमें वह बैठा ही रहे । इस प्रकार पाँचों विषयों का त्याग अतिदृढतापूर्वक हो जाये तो समझ लेना चाहिये कि उसने मन को जीत लिया है ।

(सा. १)

*

विश्वास रखकर प्रेमपूर्वक भगवान पुरुषोत्तम नारायण की बात सुनने के अतिरिक्त मनको स्थिर करने का एवं उसको निर्विषयी करनेका दूसरा कोई साधन नहीं है ।

(का. १२)

*

माया

देहमें अहंबुद्धि और देह सम्बन्धी पदार्थों में ममत्व-बुद्धि ही माया है, उस माया को मिटाना चाहिये ।

(अ. ३९)

*

भगवान की मूर्ति का ध्यान करते समय जो पदार्थ बीचमें आकर आवरण करता है उसे माया कहते हैं । (प्र. १)

*

प्रमाद और मोहका त्याग करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकार से भगवान की माया को पार कर रहा है। प्रमाद और मोहका नाम ही माया है। (सा. १४)

*

किसी भी विषय में जो मोह पैदा होता है, उसका असली कारण उसमें आसक्ति है। (म. १)

*

भगवद् वार्ता

ऐसी भगवत्स्वरूप सम्वन्धी वातें शास्त्रों में से भी अपने-आप समझ में नहीं आतीं। सत्पुरुष जव प्रकट होते हैं, तव उनके मुख से वे वातें समझी जा सकती हैं। ये वातें सद्ग्रन्थोंमे से भी अपने वुद्धिवल से नहीं समझी जा सकतीं।
(म. १३)

*

शास्त्र

माहात्म्यके साथ भगवानमें निश्चय वुद्धि न रखनेवाले जीवके मुखसे गीता, भागवत आदि सुननेसे किसीका कल्याण नहीं होता, उससे तो और नुकसान होता है।
(वर. १२)

*

वुद्धि

जो अपने कल्याणके लिये प्रयत्न करता है, वह भले

ही कम बुद्धिवाला हो, पर वह कुशाग्रबुद्धिवाला है ।

(प्र ५०)

*

'भगवानसे मेरी जितनी दूरी होगी, उतना दुःख होगा, मैं महादुःखी हो जाऊंगा और भगवानसे जितना नजदीक रहुंगा, उतनी उत्कृष्ट सुखकी प्राप्ति होगी ।' ऐसा सोचकर और भगवत्सुखका लोभ रखकर भगवानके साथ अतिशय सम्बन्ध जोड़नेका जो उपाय करता है वह बुद्धिमान है ।

(पं. १)

*

जो अपने अवगुणोंको न देखकर केवल गुणोंको ही देखता है, वह मूर्ख है, और जो अपने अवगुण देखता है, वही बुद्धिमान है । (पं. ३)

*

दैवी–आसुरी

महापुरुषका जिस पर कोप हो जाये, वह जीव आसुरी हो जाता है । और महापुरुष जिस पर प्रसन्न हो जायें वह जी दैवी हो जाता है । (वर. १५)

*

क्रोध, मान, ईर्ष्या और कपट ये चार चीजें परमेश्वर और सन्तोंके विषयमें यदि कभी न रखें तो बुद्धि कभी आसुरी नहीं होगी । (प्र. ३५)

*

जब आसुरी बुद्धि पैदा होती है तब भगवान और भगवान के भक्तों के गुण, दोषरूप में दिखाई पड़ते हैं। (प्र. ३५)

*

अज्ञानी

जो स्वयं अपने को (आत्मा को) नहीं देख सकता, वह अज्ञानियों में भी बड़ा अज्ञानी है। (प्र. २०)

*

व्यसन

व्यसन तो करने से होते हैं। व्यसनों को मिटाने का श्रद्धापूर्वक आग्रह रखा जाये और शूरता हो तो व्यसन टल सकते हैं। (लो. ८)

*

जवानी

'बचपन हो या जवानी हो, उस अवस्था में कैसे पुरुष का संग करना चाहिये?' तब श्रीजी महाराज बोले कि 'जो वयोवृद्ध तो हो, परन्तु साथ साथ जिसके धर्म, ज्ञान और वैराग्य दृढ हों और भगवान पर पूरी प्रीति रखनेवाला हो ऐसे पुरुष का संग प्रेमपूर्वक करना चाहिये। (लो. ६)

*

कर्मफल

धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी जिस फल की इच्छा हो,

उसका त्याग करके, उसके लिये किये जानेवाले शुभ कर्म भगवान की प्रसन्नता के लिये किये जायें तो वे ही शुभकर्म भक्तिरूप बनकर केवल मोक्षप्राप्ति के साधन बन जाते हैं।
(म. ११)

*

बड़प्पन

मान छोड़कर जो भगवान को भजता है, वह सारे हरिभक्तों में सबसे बड़ा है। (म. ४१)

*

प्रत्यक्ष भगवान का निश्चय करके तथा उस भगवान की आज्ञा के अनुसार बरतने से बड़प्पन आता है। (प्र. ३१)

*

जो बड़ा है उसमें निष्कामभाव (ब्रह्मचर्य) से धर्माचरण अवश्य होना चाहिये। (म. ३९)

*

जिसके हृदय में भगवान का सतत चिन्तन होता है–इससे बड़ा मनुष्यदेह का कोई लाभ नहीं है, और वह सब हरिभक्तों में मुख्य है। (म. ४८)

*

अभिप्राय

तप के द्वारा भगवान को प्रसन्न करना, भगवान को सभी पदार्थों का कर्ता-हर्ता मानना, और स्वामी-सेवकभाव से

भगवान की भक्ति करना और किसी कारणवश भगवानकी उपासना खण्डित न होने देना, बस यही हमारे वचन को परम सिद्धान्त मानना । (का. १०)

*

सुख

द्रव्यादि का लोभ, स्त्रियों के साथ उठने-बैठने की वासना, रसों के विषय में जिह्वा की आसक्ति, देहाभिमान, कुसंगियोंके साथ नाता, सम्बन्धियों पर प्यार, ये छः चीजें जिस में हों, उसको कभी भी जीते जी या मरने के बाद सुख नहीं मिल सकता । जिसे सुख की इच्छा हो, उसे चाहिये कि वह उपर्युक्त चीजों से परहेज रखे । (अं. ३८)

*

सदा सुखी रहने का उपाय

जिस भगवान के भक्त में दृढ वैराग्य हो, स्वधर्माचरणमें जो अतिशय दृढ हो, इन दो (वैराग्य और स्वधर्माचरण) साधनों के द्वारा जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय पा ली हो, भगवान और भगवान के भक्त के प्रति जिसकी प्रीति हो, जो भगवान और भगवान के भक्त के साथ अतिशय मित्र-भाव से वरतता हो, जो कभी भी भगवान और भगवान के भक्त से उदास न होता हो, जो भगवान और भगवान के भक्त के संग में प्रसन्नता का अनुभव करता हो, जिसे किसी विमुख जीवकी मैत्री पसन्द न हो, इन लक्षणों से युक्त जो

हरिभक्त-है वह इस लोक में और परलोक में भी सदा सुखी रहता है । (अं. ८)

*

भगवान का सुख

जिसका जीवन पाँचों विषयों से मुक्त हो गया है, वही भगवान के सुख का अनुभव कर पाता है, भगवान का सुख भोग सकता है । ऐसे व्यक्ति को ही भगवान के सुख की प्राप्ति होती है । (अं. २८)



बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

भगवान स्वामिनारायणके द्वारा प्रबोधित 'अक्षर–पुरुषोत्तम की उपासना, अर्थात् स्वयं अक्षररुप होकर पुरुषोत्तमकी भक्ति करना,' इस सनातन सिद्धान्त के प्रवर्तन के लिये ब्रह्मस्वरुप स्वामी श्री यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज)ने सं. १९६२ में इस संस्थाकी स्थापना की।

उन्होंने उपासना के प्रसार के लिये शिखरबद्ध मंदिरोंका निर्माण करके उनमें भगवान स्वामिनारायणकी उनके परम भक्त गुणातीतानंद स्वामी के साथ अर्थात् पुरुषोत्तम की अक्षरके साथ मूर्ति प्रतिष्ठित की।

उनके अनुगामी स्वामीश्री योगीजी महाराजने, निर्दोष संतप्रतिभा एवं निःस्वार्थ प्रेमभावके द्वारा असंख्य मनुष्योंको, विशेषतः युवावर्ग को धर्माभिमुख किया, समाज में विलुप्त होती सी धर्मश्रद्धा को पुनर्जीवन दिया, देश प्रदेशोंमे अनेक संस्कार केन्द्रोंकी स्थापना की।

वर्तमानकालमें उनके अनुगामी स्वामीश्री नारायणस्वरुपदासजी (प्रमुख स्वामी) उसी कार्यक्रमों को विशेष विस्तृत कर रहे हैं। अकाल एवं संकटग्रस्त पीडितों को राहत, विद्यार्थीओं को शैक्षणिक सहाय, वैद्यकीय सहाय, आदिवासी एवं पिछडी जातियों में संस्कार सिंचन, दवाखाना, संस्कृत–संगीत पाठशाला, हाईस्कूल, गुरुकुल, साहित्य प्रकाशन, कला उत्तेजन, मंदिर–निर्माण, संस्कार–केन्द्रोंका संस्थापन इत्यादि अनेकविध लोकोपकारक प्रवृत्तियां से प्रमुख स्वामी समाजको भक्तिरससे नवपल्लवित रख रहे हैं।

अक्षरपुरुषोत्तम विषयक तत्त्वज्ञानको वेदादि शास्त्रोंका पूरा आधार हैं, इस-लिये इसमें दिव्यता और आकर्षण है। यह प्रेमका, आध्यात्मिक जागृतिका तथा साधनाका राजमार्ग हैं।

निर्भय और निःशंक होकर आईये, भगवान स्वामिनारायण हम सब पर आशीर्वाद बरसा रहे हैं।

"हिन्दुस्तान में अनेक धर्म हैं, किन्तु स्वामिनारायण संप्रदाय शुद्ध और आकर्षक है। मुझे इस धर्मकी ओर ज्यादा आदर है।"

—महात्मा गांधी

"पीडित जातिओंके अविकसित मनुष्यों के जीवन पशु–कोटि-मेंसे उच्च कोटिमें लाकर उनको संस्कारी करने में संप्रदायका प्रदान महत्त्वपूर्ण रहा है।" —सरदार वल्लभभाई पटेल

"ऊनके प्रतापसे गुजरात में निम्न स्तरके लोगोंका अस्तित्व ही मिट गया। उन्हों ने अधमोंका सच्चा उद्धार किया था।"

—कनैयालाल मा. मुनशी

विविध प्रकाशन

१. वचनामृत	(मुद्रणमें)
२. भगवान स्वामिनारायण (सचित्र)	४–००
३. शिक्षापत्री (सचित्र)	२–००
४. शिक्षापत्री	१–००
५. वचनामृत बिन्दु	००–७५
६. भगवान स्वामिनारायण (ले. हरीन्द्र दवे)	००–६०
७. भगवान स्वामिनारायण–संगीत कलाके परिपोषक	"
८. संप्रदायका विकास एवं गुरुपरंपरा	"
९. भगवान स्वामिनारायण–समाज सुधारक	"
१०. अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी	"

साहित्यक्षेत्रके सिद्धहस्त लेखकोंके द्वारा अन्य पुस्तिकाएं प्रकाशित हो रही हैं।

: प्रकाशक :

बोचासणवासी अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

शाहीबाग रोड, अमदावाद–३८०००४.

स्वामिनारायण मुद्रण मंदिर - अहमदाबाद ३८०००१